मौर्योत्तर कालीन सिक्कों का विकास एवं द्वितीय नगरीकरण पर उसका प्रभाव: एक ऐतिहासिक विश्लेषण

नितू सिन्हा
शोधार्थी, इतिहास विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर
डॉ० सत्यार्थ प्रकाश
शोध निदेशक सह सहायक प्राध्यापक
इतिहास विभाग, के. के. एम कॉलेज, जमुई

सार

भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य के पतन (लगभग 185 ईसा पूर्व) के उपरांत आरम्भ होने वाला मौर्योत्तर काल राजनीतिक विखंडन, आर्थिक पुनर्गठन तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का युग था। इस काल में शुंग, कण्व, इंडो-ग्रीक (यवन), शक, पार्थियन, कुषाण तथा सातवाहन जैसे अनेक राजवंशों ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों पर शासन किया। इन विविध राजनीतिक शक्तियों के उदय के साथ भारतीय मुद्रा-व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। जहाँ मौर्यकाल में पंच-चिह्नित सिक्कों का प्रचलन प्रमुख था, वहीं मौर्योत्तर काल में ढाले हुए, उत्कीर्ण तथा सुव्यवस्थित स्वर्ण, रजत एवं ताम्र सिक्कों का व्यापक विकास हुआ। इन सिक्कों ने केवल विनिमय के साधन के रूप में ही नहीं, बल्कि राजकीय वैधता, आर्थिक संगठन, धार्मिक संरक्षण तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मौर्योत्तर कालीन सिक्कों के व्यापक प्रचलन ने व्यापारिक गतिविधियों को गति प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप आंतरिक एवं बाह्य व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इस आर्थिक सक्रियता ने नगरों, व्यापारिक केन्द्रों, शिल्प उत्पादन, व्यापारी संघों तथा परिवहन मार्गों के विकास को प्रोत्साहित किया। इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को भारतीय इतिहास के द्वितीय नगरीकरण की एक महत्वपूर्ण आधारशिला माना है। विशेषत: उत्तर भारत, मध्य भारत तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था और नगरीकरण के मध्य गहरा अंतर्संबंध था। मौर्योत्तर कालीन सिक्कों के विकास, उनकी विशेषताओं तथा उनके आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि इन सिक्कों ने द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया को किस सीमा तक प्रभावित किया।

कुंजी शब्द : नालंदा महाविहार, भारतीय ज्ञान-परंपरा, बौद्धिक विरासत, शास्त्रार्थ, धर्मगंज पुस्तकालय, वैश्विक ज्ञान-विनिमय, बौद्धिक स्वतंत्रता,
Recived : 15/5/2026 https://doi.org/10.5281/zenodo.21341528 Aceptance: 30/5/2026

1. भूमिका

भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य का पतन केवल एक राजनीतिक घटना नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन का भी प्रारम्भिक बिंदु था। सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य की केंद्रीय सत्ता ध ीरे-धीरे कमजोर हुई और अंतत: लगभग 185 ईसा पूर्व अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या के साथ मौर्य शासन का अंत हुआ। इसके बाद भारतीय उपमहाद्वीप अनेक क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजित हो गया। यद्यपि इस राजनीतिक विखंडन ने एकीकृत साम्राज्य की अवधारणा को समाप्त किया, किन्तु इसके परिणामस्वरूप स्थानीय आर्थिक गतिविधियों, व्यापारिक नेटवर्क तथा शहरी विकास को नई गति प्राप्त हुई।

मौर्योत्तर काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक भारतीय मुद्रा-व्यवस्था का तीव्र विकास था। पूर्ववर्ती पंच-चिह्नित सिक्कों के स्थान पर सुव्यवस्थित ढलाई एवं उत्कीर्ण तकनीक से निर्मित सिक्कों का प्रचलन बढ़ा। इंडो-ग्रीक शासकों ने भारतीय सिक्कों पर पहली बार शासकों के चित्र एवं

द्विभाषी अभिलेख अंकित किए। शक और कुषाण शासकों ने स्वर्ण मुद्राओं को व्यापक रूप से प्रचलित किया, जबकि सातवाहनों ने दक्कन क्षेत्र में क्षेत्रीय व्यापार को सुदृढ़ करने हेतु ताम्र एवं सीसे के सिक्कों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया। इस प्रकार मुद्रा-व्यवस्था में विविधता और तकनीकी प्रगति दोनों दृष्टिगोचर होती हैं।

द्वितीय नगरीकरण की अवधारणा भारतीय इतिहासलेखन में विशेष महत्व रखती है। प्रथम नगरीकरण का संबंध सिंधु सभ्यता से जोड़ा जाता है, जबकि द्वितीय नगरीकरण का संबंध गंगा घाटी एवं उत्तर भारत में नगरों के पुनः विकास से है। यद्यपि इसकी प्रारम्भिक प्रक्रिया उत्तर वैदिक एवं महाजनपद काल में आरम्भ हो चुकी थी, किन्तु मौर्योत्तर काल में व्यापार, शिल्प, कर-संग्रह, मुद्रा-प्रचलन तथा अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य के कारण नगरों का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। तक्षशिला, मथुरा, कौशाम्बी, विदिशा, उज्जयिनी, अमरावती, प्रतिष्ठान तथा वैशाली जैसे नगर आर्थिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बन गए। मुद्रा-व्यवस्था के विकास ने केवल व्यापार को ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक दक्षता को भी बढ़ाया। करों का संग्रह, सैनिकों को वेतन, लंबी दूरी के व्यापार का भुगतान तथा धार्मिक संस्थानों को दान इन सभी प्रक्रियाओं में सिक्कों का उपयोग होने लगा। परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियाँ अधिक संगठित हुईं और बाजार व्यवस्था का संस्थागत विकास हुआ।

2. अध्ययन की आवश्यकता:

मौर्योत्तर कालीन सिक्कों पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन किया है, किन्तु अधिकांश शोध मुद्राशास्त्रीय वर्गीकरण अथवा किसी एक राजवंश की मुद्रा-प्रणाली तक सीमित रहे हैं। दूसरी ओर द्वितीय नगरीकरण पर हुए अध्ययन प्रायः कृषि, व्यापार या लौह-प्रौद्योगिकी को प्रमुख कारक मानते हैं। मुद्रा-व्यवस्था और नगरीकरण के पारस्परिक संबंधों का समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। वर्तमान अध्ययन इस शोध-अंतर को भरने का प्रयास करता है। इसमें सिक्कों को केवल आर्थिक साधन न मानकर सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक तथा शहरी विकास के प्रेरक तत्व के रूप में विश्लेषित किया गया है। इससे भारतीय आर्थिक इतिहास के विकासक्रम को अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायता मिलेगी।

3. शोध के उद्देश्य:

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. मौर्योत्तर कालीन सिक्कों के विकासक्रम का ऐतिहासिक विश्लेषण करना।
2. विभिन्न राजवंशों द्वारा जारी सिक्कों की विशेषताओं का अध्ययन करना।
3. मुद्रा-प्रणाली एवं व्यापारिक विकास के पारस्परिक संबंधों का परीक्षण करना।
4. द्वितीय नगरीकरण में सिक्कों की भूमिका का विश्लेषण करना।
5. आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में मुद्रा-व्यवस्था के योगदान का मूल्यांकन करना।

4 . शोध पद्धतिः

यह अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक एवं ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में तुलनात्मक, व्याख्यात्मक तथा ऐतिहासिक विश्लेषण की पद्धतियों का उपयोग किया जाएगा ताकि सिक्कों और नगरीकरण के मध्य अंतर्संबंधों का बहुआयामी अध्ययन किया जा सके।

5. मौर्योत्तर काल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यः

मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद भारत में अनेक क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। शुंगों ने मगध एवं मध्य भारत में शासन स्थापित किया, जबकि उत्तर-पश्चिम भारत में इंडो-ग्रीक शासकों का प्रभाव बढ़ा। इसके बाद शक, पार्थियन तथा कुषाण शक्तियाँ क्रमशः भारतीय राजनीति में सक्रिय हुईं। दक्षिण भारत एवं दक्कन क्षेत्र में सातवाहन राजवंश एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा। यद्यपि इन राज्यों के बीच राजनीतिक संघर्ष होते रहे, फिर भी आर्थिक गतिविधियाँ निरंतर विकसित होती रहीं। रेशम मार्ग, उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे व्यापारिक मार्गों के माध्यम से भारत का मध्य एशिया, रोमन साम्राज्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार विस्तृत हुआ। रोमन स्वर्ण मुद्राओं की भारत में प्राप्ति तथा भारतीय मसालों, वस्त्रों, हाथी दाँत और रत्नों की विदेशी माँग इस काल की आर्थिक समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

6. मौर्योत्तर कालीन सिक्कों का विकास एवं प्रमुख राजवंशों की मुद्रा-व्यवस्थाः

मौर्य साम्राज्य के पतन (लगभग 185 ईसा पूर्व) के पश्चात भारतीय उपमहाद्वीप में राजनीतिक एकता का स्थान

अनेक क्षेत्रीय एवं विदेशी शक्तियों ने ले लिया। इस राजनीतिक परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव आर्थिक व्यवस्था और मुद्रा-प्रणाली पर पड़ा। मौर्यकाल में जहाँ पंच-चिकृित (Punch-marked) सिक्के प्रमुख विनिमय माध्यम थे, वहीं मौर्योत्तर काल में तकनीकी दृष्टि से अधिक विकसित, कलात्मक तथा राजकीय प्रतीकों से युद्ध सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इस परिवर्तन ने भारतीय मुद्राशास्त्र को एक नवीन दिशा प्रदान की तथा व्यापारिक गतिविधियों को अधिक संगठित बनाया। मौर्योत्तर काल की मुद्रा-व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि सिक्के केवल आर्थिक लेन-देन के साधन नहीं रहे, बल्कि वे राजनीतिक वैधता, धार्मिक संरक्षण, सांस्तिक पहचान तथा राजकीय प्रभुत्व के प्रतीक भी बन गए। शासकों ने अपने नाम, उपाधियाँ, धार्मिक प्रतीक तथा चित्र सिक्कों पर अंकित कर उन्हें राज्यसत्ता के प्रचार का प्रभावी माध्यम बनाया।

1. शुंग एवं कण्व कालीन सिक्के:

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद शुंग वंश (लगभग 185-73 ईसा पूर्व) ने मगध एवं मध्य भारत में अपना शासन स्थापित किया। शुंगों के शासनकाल में पंच-चिह्नित सिक्कों की परंपरा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई, किंतु स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाले हुए ताम्र सिक्कों का प्रचलन बढ़ा। इन सिक्कों पर वृक्ष, हाथी, बैल, स्वस्तिक, कमल, चौत्य तथा अन्य धार्मिक प्रतीकों का अंकन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतीकों का मुद्रा-निर्माण पर गहरा प्रभाव था। कण्व वंश (लगभग 73-28 ईसा पूर्व) का शासन अपेक्षाकृत अल्पकालीन रहा, फिर भी इस काल में स्थानीय स्तर पर ताम्र मुद्राओं का उपयोग जारी रहा। शुंग और कण्व कालीन सिक्कों की संख्या अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुई है।

2. इंडो-ग्रीक (यवन) सिक्कों का योगदान

भारतीय मुद्रा-व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन इंडो-ग्रीक शासकों के आगमन से हुआ। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में उत्तर-पश्चिम भारत में स्थापित इंडो-ग्रीक राज्यों ने पहली बार भारतीय सिक्कों पर शासकों के वास्तविक चित्र (Portrait) अंकित किए। यह भारतीय मुद्राशास्त्र की एक नई परंपरा थी।

इंडो-ग्रीक सिक्कों की प्रमुख विशेषताएँ थीं-

1. शासक का चित्र।
2. यूनानी एवं खरोष्ठी लिपि में द्विभाषी लेख।
3. उच्च गुणवत्ता वाली धातु।
4. निश्चित भारमान
5. देवताओं एवं धार्मिक प्रतीकों का अंकन।

राजा मेनांडर (डपसपदकं) तथा एंटियल्किडास जैसे शासकों द्वारा जारी सिक्के भारतीय एवं यूनानी कला के अद्‌भुत समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन सिक्कों ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भारतीय मुद्रा की विश्वसनीयता बढ़ाई तथा विदेशी व्यापारियों के लिए विनिमय को सरल बनाया।

3. शक एवं पार्थियन मुद्रा-व्यवस्था:

इंडो-ग्रीकों के पश्चात उत्तर-पश्चिम भारत में शक (Scythian) तथा पार्थियन शासकों का उदय हुआ। इन शासकों ने इंडो-ग्रीक मुद्रा-परंपरा को अपनाते हुए भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप उसमें परिवर्तन किए।

शक सिक्कों की प्रमुख विशेषताएँ थीं-

1. रजत एवं ताम्र धातुओं का व्यापक उपयोग।
2. शासकों के चित्र।
3. ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपि का प्रयोग।
4. सूर्य, चंद्र तथा अन्य धार्मिक प्रतीकों का अंकन।

विशेष रूप से पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्के गुजरात, मालवा तथा पश्चिमी भारत में व्यापक रूप से प्रचलित थे। इन क्षेत्रों का समुद्री व्यापार अत्यंत विकसित था। भड़ौच (Bharukachchha) सोपारा तथा कालीकट जैसे बंदरगाहों से रोमन साम्राज्य के साथ होने वाले व्यापार में इन सिक्कों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

4. कुषाण साम्राज्य और स्वर्ण मुद्रा का उत्कर्ष:

मौर्योत्तर कालीन मुद्रा-व्यवस्था का सर्वाधिक विकसित रूप कुषाण साम्राज्य (प्रथम-तृतीय शताब्दी ईस्वी) में दिखाई देता है। कुषाण शासकों ने भारतीय इतिहास में पहली बार बड़े पैमाने पर स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन किया। विशेषत: सम्राट कनिष्क, विम कडफिसेस तथा हुविष्क के सिक्के अत्यंत उत्कृष्ट कलात्मक गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं।

कुषाण सिक्कों से यह स्पष्ट होता है कि उनका साम्राज्य मध्य एशिया, चीन तथा रोमन साम्राज्य के साथ व्यापक व्यापारिक संबंध रखता था। रेशम मार्ग पर नियंत्रण ने कुषाणों को अत्यधिक आर्थिक समृद्धि प्रदान की, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी स्वर्ण मुद्राएँ हैं। कुषाण सिक्के भारतीय आर्थिक इतिहास में मौद्रिक स्थिरता, व्यापारिक विस्तार तथा शहरी विकास के

महत्वपूर्ण संकेतक माने जाते हैं। इन सिक्कों के व्यापक प्रचलन ने बड़े व्यापारिक लेन-देन को सरल बनाया तथा लंबी दूरी के व्यापार को नई गति प्रदान की।

5. सातवाहन मुद्रा-व्यवस्था:

दक्षिण भारत एवं दक्कन क्षेत्र में सातवाहन वंश (लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से तृतीय शताब्दी ईस्वी) ने भारतीय मुद्रा-व्यवस्था को क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किया। सातवाहनों ने ताम्र, सीसा, पोटिन तथा कुछ रजत सिक्कों का निर्माण किया। सातवाहन सिक्कों पर हाथी, जहाज, सिंह, चक्र, उज्जैन-चिह्न तथा विभिन्न धार्मिक प्रतीकों का अंकन मिलता है। जहाज का चित्र विशेष रूप से समुद्री व्यापार की उन्नति का प्रतीक माना जाता है। दक्कन क्षेत्र के नगर-प्रतिष्ठान टैगारा अमरावती तथा नासिक-व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बन गए।

6. स्थानीय एवं जनजातीय सिक्कों का विकास:

मौर्योत्तर काल में केवल बड़े साम्राज्यों ने ही सिक्के जारी नहीं किए, बल्कि अनेक गणराज्यों, नगर-राज्यों तथा जनजातीय समुदायों ने भी अपनी स्थानीय मुद्राएँ जारी कीं। यौधेय, अर्जुनायन, मालव, औदुम्बर तथा कुणिन्द जैसे गणराज्यों के सिक्के इस बात का प्रमाण हैं कि स्थानीय आर्थिक संरचनाएँ भी अत्यंत सक्रिय थीं। इन स्थानीय सिक्कों से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय व्यापार, कर-संग्रह तथा बाजार व्यवस्था में मुद्रा का उपयोग व्यापक हो चुका था।

7. मौर्योत्तर कालीन सिक्कों की धातुएँ, निर्माण तकनीक, भारमान एवं मौद्रिक मानकीकरण:

मौर्योत्तर काल भारतीय मुद्रा-इतिहास का वह चरण है जिसमें सिक्कों के निर्माण, धातु-चयन, भारमान तथा कलात्मक स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। यह परिवर्तन केवल तकनीकी उन्नति का परिणाम नहीं था, बल्कि उस समय की आर्थिक आवश्यकताओं, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तथा प्रशासनिक दक्षता से भी गहराई से जुड़ा हुआ था। इस काल में मुद्रा-व्यवस्था अधिक संगठित, मानकीकृत एवं बहुस्तरीय बन गई, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को वस्तु-विनिमय आधारित प्रणाली से विकसित मौद्रिक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर किया।

1. धातुओं का विविधिकरण एवं आर्थिक महत्त्व:

मौर्यकाल में पंच-चिह्नित रजत सिक्कों का प्रभुत्व था, किंतु मौर्योत्तर काल में स्वर्ण, रजत, ताम्र, सीसा, पोटिन तथा मिश्रधातुओं का उपयोग व्यापक रूप से होने लगा। विभिन्न राजवंशों ने अपनी आर्थिक क्षमता, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों तथा व्यापारिक आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग धातुओं का उपयोग किया। कुषाण शासकों ने उच्च शुद्धता वाले स्वर्ण सिक्कों का व्यापक प्रचलन किया। इन स्वर्ण मुद्राओं का उपयोग बड़े व्यापारिक लेन-देन, राजकीय भुगतान तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार में किया जाता था। इसके विपरीत सातवाहन शासकों ने दक्कन क्षेत्र में सीसा एवं ताम्र सिक्कों का अधिक उपयोग किया, क्योंकि स्थानीय व्यापार में कम मूल्यवर्ग की मुद्रा की आवश्यकता अधिक थी। पश्चिमी क्षत्रपों ने मुख्यत: रजत सिक्कों का निर्माण किया, जबकि अनेक स्थानीय गणराज्यों ने ताम्र सिक्कों का प्रचलन बनाए रखा। धातुओं की यह विविधता इस बात का प्रमाण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न स्तरों के बाजार विकसित हो चुके थे। बड़े व्यापारी स्वर्ण मुद्रा का उपयोग करते थे, जबकि स्थानीय बाजारों में ताम्र एवं शीसे के सिक्के अधिक प्रचलित थे।

2. सिक्का निर्माण की तकनीकी प्रगति:

मौर्योत्तर काल में सिक्का निर्माण की तकनीक में उल्लेखनीय सुधार हुआ। पंच-चिह्नित सिक्कों के स्थान पर डाई-प्रहार तकनीक का प्रयोग बढ़ा, जिसमें पहले धातु की चकती तैयार की जाती थी और फिर उस पर दोनों ओर उत्कीर्ण डाइयों के माध्यम से चित्र एवं लेख अंकित किए जाते थे। इस तकनीक से सिक्कों की गुणवत्ता, स्पष्टता तथा एकरूपता में वृद्धि हुई। इंडो-ग्रीक शासकों ने इस तकनीक को भारतीय उपमहाद्वीप में व्यवस्थित रूप से विकसित किया। उनके सिक्कों पर शासकों के यथार्थ चित्र, मुकुट, राजदंड तथा देवताओं की आकृतियाँ अत्यंत कलात्मक ढंग से अंकित होती थीं। कुषाणों ने इसी परंपरा को और विकसित करते हुए बहुभाषी एवं बहुधार्मिक प्रतीकों का समावेश किया। सातवाहन सिक्कों पर हाथी, जहाज, उज्जयिनी-चिह्न, सिंह तथा स्तूप जैसे प्रतीक अंकित किए गए, जो उनके राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के प्रतिनिधि थे। निर्माण तकनीक में यह सुधार केवल कलात्मक उपलब्धि नहीं था, बल्कि इससे सिक्कों की पहचान सरल हुई, नकली मुद्रा की संभावना कम हुई तथा जनता का मुद्रा पर विश्वास बढ़ा। यही विश्वास बाजार अर्थव्यवस्था के विस्तार का आधार बना।

3. भारमान एवं मौद्रिक मानकीकरण

किसी भी विकसित मुद्रा-व्यवस्था की सफलता उसके मानकीकृत भारमान पर निर्भर करती है। मौर्योत्तर काल में विभिन्न राजवंशों ने निश्चित भारमान के आधार पर सिक्कों का निर्माण किया। यद्यपि सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में एक समान मानक नहीं था, फिर भी प्रत्येक राज्य ने अपने क्षेत्र में मुद्रा का मानकीकरण सुनिश्चित किया। इंडो-ग्रीक सिक्कों में हेलनिस्टिक भारमान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कुषाण स्वर्ण मुद्राओं का भार अपेक्षाकृत स्थिर था, जिससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार में उनकी विश्वसनीयता बनी रही। पश्चिमी क्षत्रपों के रजत सिक्के भी निश्चित मानकों के अनुरूप निर्मित होते थे। सातवाहन राज्य में विभिन्न मूल्यवर्गों के सिक्के स्थानीय व्यापार की आवश्यकताओं के अनुसार ढाले जाते थे।

4. सिक्कों की कलात्मक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ:

मौर्योत्तर कालीन सिक्के भारतीय कला एवं सांस्कृतिक इतिहास के अमूल्य स्रोत हैं। इन पर अंकित चित्रों एवं प्रतीकों से तत्कालीन धार्मिक विश्वास, राजकीय विचारधारा तथा सांस्कृतिक समन्वय का ज्ञान प्राप्त होता है। इंडो-ग्रीक सिक्कों पर यूनानी देवताओं के साथ स्थानीय प्रतीकों का समावेश मिलता है। कुषाण शासकों ने शिव, बुद्ध, नाना, मिथ्र तथा हेलिओस जैसे विभिन्न धार्मिक प्रतीकों को एक ही मुद्रा-परंपरा में स्थान दिया। इससे स्पष्ट होता है कि उनका साम्राज्य बहुसांस्कृतिक एवं बहुधार्मिक था। सातवाहन सिक्कों पर जहाज का चित्र समुद्री व्यापार की उन्नति का प्रतीक है, जबकि हाथी शक्ति एवं समृद्धि का द्योतक माना जाता है।

5. मुद्रा-प्रणाली का संस्थागत विकास:

मौर्योत्तर काल में मुद्रा का उपयोग केवल व्यापार तक सीमित नहीं रहा। राजस्व संग्रह, सैनिकों के वेतन, धार्मिक संस्थाओं को दान, शिल्पकारों के भुगतान तथा भूमि-क्रय-विक्रय जैसी प्रक्रियाओं में भी सिक्कों का व्यापक उपयोग होने लगा। इससे आर्थिक गतिविधियाँ अधिक संगठित हुईं तथा नकद भुगतान की प्रवृत्ति बढ़ी। इसी काल में श्रेणी एवं निगम जैसे व्यापारिक संगठनों का महत्व भी बढ़ा। ये संस्थाएँ उत्पादन, ऋण, व्यापार तथा निवेश में सक्रिय थीं और उनका संचालन प्रायः मुद्रा-आधारित लेन-देन पर निर्भर था। परिणामस्वरूप बाजार व्यवस्था अधिक संस्थागत, विश्वसनीय एवं गतिशील बनी।

8. मौर्योत्तर कालीन सिक्कों का व्यापार:

कर-व्यवस्था,शिल्प उत्पादन एवं द्वितीय नगरीकरण पर प्रभाव मौर्योत्तर कालीन भारत में सिक्कों का विकास केवल मुद्रा-व्यवस्था के विस्तार तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने आर्थिक संगठन, व्यापारिक गतिविधियों, शिल्प उत्पादन, कर-प्रशासन तथा नगरीय विकास की संपूर्ण संरचना को प्रभावित किया। राजनीतिक विखंडन के बावजूद इस काल में व्यापारिक नेटवर्क अधिक सुदृढ़ हुए, नए बाजार विकसित हुए तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संपर्कों का विस्तार हुआ।

1. व्यापारिक विस्तार में मुद्रा की भूमिका:

प्राचीन भारत की वस्तु-विनिमय प्रणाली सीमित आर्थिक गतिविधियों के लिए उपयुक्त थी, किंतु जैसे-जैसे उत्पादन, व्यापार तथा बाजारों का विस्तार हुआ, वैसे-वैसे एक मानकीकृत मुद्रा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। मौर्योत्तर काल में विभिन्न राजवंशों द्वारा जारी सिक्कों ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। मुद्रा के व्यापक प्रचलन से व्यापारिक लेन-देन अधिक सुगम हो गया। व्यापारी अब वस्तुओं के प्रत्यक्ष विनिमय के बजाय मुद्रा के माध्यम से क्रय-विक्रय करने लगे। इससे व्यापार की गति तेज हुई, लेन-देन की लागत कम हुई तथा दूरस्थ क्षेत्रों के बीच आर्थिक संबंध मजबूत हुए। उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा रेशम मार्ग जैसे प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर स्थित नगरों-तक्षशिला, मथुरा, उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी, प्रतिष्ठान और अमरावती में बड़ी संख्या में सिक्कों की प्राप्ति इस बात का संकेत देती है कि ये नगर सक्रिय व्यापारिक केंद्र थे। इन क्षेत्रों में स्थानीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार दोनों का निरंतर विस्तार हुआ।

2. समुद्री व्यापार एवं विदेशी वाणिज्य:

मौर्योत्तर काल भारतीय समुद्री व्यापार के उत्कर्ष का काल भी था। पश्चिमी भारत के भड़ौच (भरुकच्छ) सोपारा तथा दक्षिण भारत के अनेक बंदरगाह रोमन साम्राज्य, मिस्र तथा पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार के प्रमुख केंद्र बन चुके थे। भारतीय मसाले, सूती एवं रेशमी वस्त्र, हाथीदाँत, मोती, रत्न तथा धातु-निर्मित वस्तुएँ विदेशों को निर्यात की जाती थीं, जबकि सोना, चाँदी, उत्तम मदिरा, काँच के पात्र तथा विलासिता की अन्य वस्तुएँ आयात की जाती थीं। रोमन स्वर्ण मुद्राओं की बड़ी संख्या दक्षिण भारत तथा दक्कन के अनेक स्थलों से प्राप्त हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत का विदेशी व्यापार अत्यंत

समृद्ध था। विदेशी व्यापार से प्राप्त स्वर्ण ने भारतीय मुद्रा-व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ बनाया तथा बड़े पैमाने पर स्वर्ण सिक्कों के प्रचलन को संभव बनाया।

3. कर-व्यवस्था एवं प्रशासनिक संगठन

मुद्रा-प्रणाली के विकास ने कर-संग्रह की प्रक्रिया को भी अधिक संगठित बनाया। मौर्योत्तर काल में अनेक क्षेत्रों में करों का भुगतान नकद मुद्रा के रूप में होने लगा। इससे राजकोषीय व्यवस्था अधिक स्थिर हुई तथा राज्य को नियमित आय प्राप्त होने लगी। सैनिकों के वेतन, प्रशासनिक अधिकारियों के भुगतान, सार्वजनिक निर्माण, धार्मिक अनुदान तथा व्यापारिक नियंत्रण जैसी गतिविधियों में भी सिक्कों का उपयोग बढ़ा। परिणामस्वरूप शासन व्यवस्था अधिक प्रभावी बनी तथा प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि हुई। कई क्षेत्रों में स्थानीय शासकों द्वारा जारी सिक्कों ने यह भी स्पष्ट किया कि मुद्रा-निर्माण राजनीतिक संप्रभुता का प्रतीक बन चुका था। जिस राज्य की मुद्रा जितनी अधिक प्रचलित थी, उसका आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव भी उतना ही व्यापक माना जाता था।

4. शिल्प उत्पादन एवं व्यापारी श्रेणियों का विकासः

मौर्योत्तर काल में मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था के कारण शिल्प उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। वस्त्र निर्माण, धातु उद्योग, मृद्भांड निर्माण, आभूषण उद्योग तथा हाथी दाँत शिल्प जैसे अनेक उद्योगों का तीव्र विकास हुआ। इन उद्योगों के उत्पाद स्थानीय बाजारों के साथ-साथ विदेशी व्यापार में भी निर्यात किए जाते थे। श्रेणी एवं निगम इस काल की आर्थिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण संस्थान थे। ये संगठन उत्पादन, गुणवत्ता नियंत्रण, ऋण वितरण तथा व्यापारिक गतिविधियों का संचालन करते थे। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि व्यापारी एवं शिल्पकार श्रेणियाँ धार्मिक संस्थाओं को दान देती थीं।

5. कृषि अधिशेष एवं बाजार अर्थव्यवस्थाः

मौर्योत्तर काल में कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा सिंचाई के विस्तार के कारण अधिशेष उत्पादन उपलब्ध होने लगा। यह अधिशेष स्थानीय एवं क्षेत्रीय बाजारों तक पहुँचने लगा, जहाँ उसका विनिमय सिक्कों के माध्यम से किया जाता था। कृषि अधिशेष ने नगरों में रहने वाले शिल्पकारों, व्यापारियों एवं प्रशासनिक वर्ग के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति सुनिश्चित की। इसके परिणामस्वरूप नगरीय अर्थव्यवस्था अधिक स्थिर हुई तथा नगरों का विस्तार संभव हुआ। मुद्रा-प्रचलन ने ग्रामीण एवं नगरीय अर्थव्यवस्था के बीच आर्थिक संबंधों को भी सुदृढ़ किया। किसान अपने उत्पाद बाजार में बेचकर मुद्रा प्राप्त करते थे, जबकि नगरों से निर्मित वस्तुएँ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचती थीं।

6. द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया में सिक्कों की भूमिकाः

द्वितीय नगरीकरण केवल नगरों की संख्या में वृद्धि नहीं था, बल्कि यह आर्थिक संगठन, व्यापारिक विस्तार, प्रशासनिक केंद्रीकरण तथा सामाजिक विभाजन की संयुक्त प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया में सिक्कों ने एक प्रेरक भूमिका निभाई। मुद्रा के कारण व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आई, जिससे नगरों में बाजारों का विकास हुआ। व्यापारियों, शिल्पकारों, साहूकारों तथा परिवहन सेवाओं से जुड़े लोगों का नगरीय क्षेत्रों में संकेन्द्रण हुआ। इससे नगर आर्थिक गतिविधियों के केंद्र बन गए। मथुरा, कौशाम्बी, विदिशा, उज्जयिनी, तक्षशिला, नासिक, प्रतिष्ठान तथा अमरावती जैसे नगरों से प्राप्त सिक्कों के विशाल भंडार यह संकेत देते हैं कि इन नगरों में मुद्रा का व्यापक प्रचलन था। पुरातात्त्विक उत्खननों में प्राप्त सिक्का-भंडार, गोदाम, कार्यशालाएँ तथा व्यापारिक संरचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि मौर्योत्तर कालीन नगरीकरण का आर्थिक आधार अत्यंत मजबूत था।

मुद्रा-प्रणाली के विकास का सर्वाधिक प्रभाव व्यापारिक गतिविधियों पर पड़ा। उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा रेशम मार्ग जैसे व्यापारिक मार्गों के माध्यम से भारत का मध्य एशिया, रोमन साम्राज्य और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार विस्तृत हुआ। रोमन स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिण भारत एवं दक्कन में प्राप्ति इस तथ्य का प्रमाण है कि भारतीय व्यापारी अंतरराष्ट्रीय व्यापार में सक्रिय थे। सिक्कों के व्यापक प्रचलन ने वस्तु-विनिमय प्रणाली की सीमाओं को समाप्त करते हुए बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया। शिल्प उत्पादन, व्यापारी श्रेणियों राजस्व व्यवस्था तथा प्रशासनिक संगठन के विकास में भी सिक्कों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। श्रेणियों एवं निगमों ने मुद्रा-आधारित लेन-देन के माध्यम से उत्पादन, निवेश तथा व्यापार का विस्तार किया। करों का नकद भुगतान, सैनिकों के वेतन तथा धार्मिक संस्थाओं को दान जैसी व्यवस्थाएँ मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था की परिपक्वता को दर्शाती हैं।

9. निष्कर्ष :

मौर्योत्तर काल भारतीय इतिहास का ऐसा संक्रमणकाल था जिसमें राजनीतिक विखंडन के साथ-साथ आर्थिक पुनर्गठन और सांस्कृतिक विस्तार की प्रक्रियाएँ समानांतर रूप से विकसित हुईं। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद शुंग, कण्व, इंडो-ग्रीक, शक, पार्थियन, कुषाण तथा सातवाहन जैसे अनेक राजवंशों ने अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता स्थापित की। इन राजवंशों ने न केवल प्रशासनिक संरचना का पुनर्गठन किया, बल्कि मुद्रा-व्यवस्था को भी नई दिशा प्रदान की। परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप में सिक्कों का स्वरूप, निर्माण तकनीक, धातु-विविधता तथा उपयोग का क्षेत्र अभूतपूर्व रूप से विस्तृत हुआ। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मौर्योत्तर कालीन सिक्के केवल विनिमय के साधन नहीं थे, बल्कि वे राज्यसत्ता, आर्थिक संगठन, धार्मिक संरक्षण और सांस्कृतिक पहचान के भी प्रभावी माध्यम थे। इंडो-ग्रीक शासकों ने सिक्कों पर शासकों के चित्र एवं द्विभाषी अभिलेख अंकित कर भारतीय मुद्राशास्त्र में नई परंपरा की शुरुआत की। कुषाण शासकों ने स्वर्ण मुद्राओं को अंतरराष्ट्रीय व्यापार के अनुरूप विकसित किया, जबकि सातवाहनों ने स्थानीय व्यापार की आवश्यकताओं के अनुसार ताम्र, सीसा एवं मिश्रधातु की मुद्राओं का व्यापक उपयोग किया। इन सभी परिवर्तनों ने भारतीय मुद्रा-व्यवस्था को अधिक मानकीकृत, विश्वसनीय और गतिशील बनाया।

द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सिक्कों का विकास इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण आर्थिक आधार था। मथुरा, तक्षशिला, कौशाम्बी, विदिशा, उज्जयिनी, प्रतिष्ठान, नासिक और अमरावती जैसे नगरों में प्राप्त सिक्का-भंडार, शिल्प कार्यशालाएँ तथा व्यापारिक संरचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि मुद्रा-प्रणाली ने नगरीय जीवन को गति प्रदान की। तथापि यह भी स्पष्ट है कि द्वितीय नगरीकरण केवल सिक्कों के कारण नहीं हुआ। कृषि अधिशेष, लौह-प्रौद्योगिकी, व्यापारिक मार्ग, राज्य संरक्षण तथा शिल्प उत्पादन भी इसके समान रूप से महत्त्वपूर्ण कारक थे। अतः सिक्कों को इस व्यापक आर्थिक परिवर्तन के केंद्रीय घटकों में से एक माना जाना चाहिए, न कि एकमात्र कारण। मौर्योत्तर कालीन सिक्कों का विकास भारतीय आर्थिक इतिहास की एक निर्णायक घटना थी। इसने मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया, व्यापार एवं शिल्प उत्पादन का विस्तार किया, क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संपर्कों को बढ़ावा दिया तथा द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की। इसलिए मौर्योत्तर कालीन सिक्कों का अध्ययन केवल मुद्राशास्त्र तक सीमित न होकर भारत के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

संदर्भ गन्थ सूची:

1. शर्मा, रामशरण. (2007). इंडियाज एंशिएंट पास्ट, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. शर्मा, रामशरण. (2011), प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास,नई दिल्ली: वीवा बुक्स।
3. सिंह, उपिंदर. (2008). प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास: पाषाण युग से 12वीं शताब्दी तक हम to जीम 12जी Century) नई दिल्ली: पियर्सन एजुकेशन।
4. कोसांबी, दामोदर धर्मानंद. (1956). भारतीय इतिहास के अध्ययन का परिचय, मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन।
5. थापर, रोमिला.(2002), प्रारम्भिक भारत: उद्गम से 1300 ईस्वी तक,नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. डेयल, जॉन एस. (1990). लिविंग विदाउट सिल्वर: प्रारम्भिक मध्यकालीन उत्तर भारत का मौद्रिक इतिहास, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, इंडियन आर्कियोलॉजी- ए रिव्यू (विभिन्न वार्षिक अंक). नई दिल्ली: भारत सरकार।
8. इंडियन न्यूमिस्मैटिक सोसायटी. जर्नल ऑफ द न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया (विभिन्न अंक)।
9. साहू, बी. पी. (सम्पादक), (1997). मौर्योत्तर भारत में समाज एवं संस्कृति, नई दिल्ली- तुलिका बुक्स।
12. राय चौधरी, हेमचन्द्र. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. राय, हिमांशु प्रभा. द विंड्स ऑफ चेंज: प्रारम्भिक दक्षिण एशिया में बौद्ध धर्म एवं समुद्री व्यापार, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।